विजयानन्दसूरिभ्यो नमोनमः ॥

तिलकविलास

लेखक,

मुनि तिलकविजय.

मैं कौन हूं आया कहांसे और जाऊंगा कहां,
क्या था किया मैं कार्य क्या आकर यहाँ.

प्रकाशक,
[illegible]न्द जैनसभा, अंबाला शहर.
[illegible]२४४२ आत्म सं. २१ वि. सं. १९७२

तिलकविलास ।

लेखक

मुनि तिलकविजय.

मैं कौन हूँ आया कहाँसे और जाऊँगा कहाँ,
करना मुझे क्या था किया मैं कार्य क्या आकर यहाँ.

प्रकाशक,
आत्मानन्द जैनसभा, अंबाला शहर.
श्री वीर सं. २४४२ आत्म सं. २१ वि. सं. १९७२

जामनगर—'विद्यासागर' प्रेसमें मैनेजर
चकुभाइ लधुभाइने छापी.

जैनाचार्य न्यायांभोनिधि श्रीमद्विजयानन्दसूरि
(आत्मारामजी महाराज.)

जन्म—संवत् १८९३. स्वर्गवास—संवत् १९५३.

समर्पण ।

परमोपकारी गुरुवर्य्य श्रीमान्
ललितविजयजी महाराजकी

विभो ! ->※ पवित्र सेवामें.

जो मिली आपसे चीज आपको कैसे अर्पण करूँ उसे—
मैं होकर तोभी धृष्ट आपके करकमलोंमें धरूँ इसे ।
अत एव धृष्टतापर मेरी न ध्यान आप कुछभी दीजे,
हे दयानिधे ! किङ्कर कृतिको स्वीकृत कर मम उपकृत कीजे ॥

हो पूर्ण करते आप तो गुरु जैसी जिसकी आश हो ।
फिर आपके करकमल शोभित क्यों न तिलकविलास हो ॥

आपका कृपापात्र, तिलक.

भूमिका।

प्रिय पाठको महर्षियोंका कथन है कि–शुभे यथा शक्तियत्नीयम्। अत एव मैंने शुभ समझ करही यह चेष्टा की है। मुझे कोई कवि बननेकी हौंस नहीं और नाही मुझमें यह योग्यता। मैं जानता हूँ कि

तिलकविलासके

लिखनेमें जो मैंने साहस किया है वह बालचेष्टाके समानही है

तथापि

मैं आशा रखता हूँ कि जैनसमाज प्रेमीजन इस पुस्तकको वाचकर अवश्य कुछ न कुछ लाभ उठायेंगे और आगेके लिए मुझे प्रोत्साहित करेंगे।

मुनि तिलकविजय.

॥ तिलकविलास ॥

॥ वन्दे वीरम् ॥

हैं ध्यानसे जिनके अनन्तेही गये अपवर्गमें,
हैं आजभी जाते जिन्होंके नामसे भवि स्वर्गमें
सर्वेश हैं जगमें वही अपवर्ग उनका धाम है,
गतदोष ऐसे देवको श्रद्धा समेत प्रणाम है ॥

[१]

शंभू स्वयंभू राम चाहे वीर वासुदेव हो,
करता न किन्तु कुलालवत संसारका स्वयमेव हो।
वो क्रोध माया मान आदि हो विजित्वर चारका,
है अन्त जिसने पालिया संसार पारावारका ॥

[२]

वह मान्य है सबको सदा वह आप सबका ईश है,
ऐसे प्रभुके चरणकमलोंमें हमारा सीश है।
हम हाथ दोनों जोड़कर उनसे विनय करते यही,
पीड़ा हरो प्रभु विश्वकी बस और क्या बाकी रही ॥

[३]

(श्रीविजयानन्दगुरुगुण द्वात्रिंशिका.)

आनन्दसूरि तुम हो गुण रत्न धाम,
है आपका सिमरता जग नित्य नाम।
देवस्वरूप भजते कर विश्व काम,
काया मनोवचनसे तुमको प्रणाम ॥

[१]

देखो दशा जगतकी यह क्या भई है,
जो भारतीय जयथी वह सोगई है।
हानी सदैव जगमें अब छारही है,
यों देशकी विभवता सब जारही है ॥

[२]

होते इसी समयमें यदि आतमराम,
अज्ञान तो फिर यहाँ करता न धाम।
ऐसा न कोइ जगमें अब बोधधारी,
थे भारतीय जयके परमोपकारी ॥

[३]

जो विश्वमें सुकृतिने पुरुषार्थ कीना,
है ज्ञानसे जगतको निज लाभ दीना।
क्या जीभ है मनुजकी कथनी करे जो ?
है वीर कौन उनकी तुलना धरे जो ? ॥

[४]

थे संघमें धुरिणवे हरिके समान,
था धारता सुगुरुके गुण दीप्तिमान।
थी सौम्यता वदनकी अति शूभ्र जैसी,
है चंद्रभी रजनिमें धरता न वैसी ॥

[५]

नामानुसार उनके गुण विश्वमें थे,
वस्ते सदा सुजनके हृदि बीचमें थे।
संसारके मल सभी उनमें नहीं थे,
वे विश्व वन्द्य जगमें वस एकही थे।

[६]

कीड़ीसे जो करि सम करें मूरखसे जो पण्डित करें,
पुत्रसेभी प्रेम ज्यादा जो सदा हमपर धरें ।
इतना नहीं किन्तु हमें निज आत्म सम करते अहो,
ऐसे गुरु महाराजके क्यों न ऋणी होवें कहो ? ॥

[७]

वागीश्वरी उनके वदनमें वास करती थी सदा,
श्रोता जनोंके भावको उल्लास करती थी सदा ।
वेधीरथे गंभीरथे औ शुद्ध उनका ज्ञान था,
पर चित्र है उनके हृदयमें लेशभी नहीं मान था ॥

[८]

संसार उनका दास था वे पूज्य थे संसारके,
उपकार करते थे सदा षट्त्रिंशगुणको धारके ।
निर्लोभ थे गत शोक थे खोटा न उनको पक्ष था,
वे धैर्यच्युत होते न थे सब ओर उनका लक्ष था ॥

[९]

उस कालमें धीमान वैसे देख पड़ते थे कहाँ?
वाचस्पति सुरलोकसे मानो वे आयेथे यहाँ।
विख्यात है पंजाब जगमें जन्म उनका था वहाँ,
है वीर पुत्रोंको अभीतक जन्म भू देती जहाँ ॥

[१०]

दुरवासनाको टारके शुभ ज्ञानके दातार थे,
अपराधपर करते क्षमा ऐसे दया भंडार थे।
संसारभरमें काम जिनका आजभी विख्यात है,
है कौन व्यक्ति नाम वो उनका जिसे अज्ञात है? ॥

[११]

उपदेशद्वारा भविजनोंका दूर करते कष्ट थे,
उनको सुधारा है उन्होंने धर्मसे जो भ्रष्ट थे।
इस कालमें वे दीन बन्धु सद्गुणोंके धाम थे,
संतोषकारक भव्यजीवोंको उन्होंके काम थे ॥

[१२]

भूले हुवे को पथ वताना मुख्य उनका कार्य था,
निःशेप जैनसमाज उनको मानता आचार्य था।
आश्चर्यकारकही उन्होंने जो वनाये ग्रन्थ हैं,
शिवशर्म पानेके लिए सीधे सर्ल वह पन्थ हैं ॥

[१३]

उन धर्म ग्रन्थोंका यहाँपर आजभी संचार है,
अत्यल्प अक्षर हैं तथा वहु अर्थका विस्तार है।
उन पुस्तकोंके वाँचनेसे अज्ञ जन सुधरे घने,
थे जन्मसे अज्ञान जो पण्डित उन्हें पढ़कर वने ॥

[१४]

इस कालमेंभी शुद्ध पंचाचारको थे पालते,
धर्मोन्नतिमेंही सदा रहते उन्होंके ख्याल थे।
निज द्रोह करता कोभी वे देते कभी ना शाप थे,
पीयूपसे उनके वचनभी हरन करते तापथे ॥

[१५]

शठता तथा माया उन्हें करनी कभी आती न थी,
उन्मार्गमें भी तो नज़र उनकी कभी जाती न थी।
उनके विना अब जैनियोंमें अज्ञता तम छारहा,
मात्सर्य वैर विरोधकाही काल है अब आ रहा ॥

[१६]

आलस्यवश होकर समयको वे कभी खोते न थे,
संसार जीवोंको अहित कर वीज वे वोते न थे।
अति दूर देशोंतक उन्होंका ज्ञान रोशन हो गया,
है कार्यभी जगमें उन्होंका कीर्ति तरुको वो गया ॥

[१७]

अत्यन्त गुणधारक उन्होंका नाम और चरित्र है,
अति पुण्यदायी है तथा श्रोतव्य और पवित्र है।
उन पूर्वजोंकी कीर्तिका विस्तार करना व्यर्थ है,
कोई यहाँ संपूर्ण लिखनेके लिए न समर्थ है ॥

[१८]

अपकारियोंपरभी अहो! उपकार करते थे सदा,
अज्ञान दुःखित दुःखियोंका दुःख हरते थे सदा।
जिस कार्यमें पूरा उन्होंने लक्ष था अपना दिया,
था सिद्धही उस कामको झटपट उन्होंने कर दिया

[१९]

थे न्यायके सागर सदा अन्यायको थे मेट ते,
भवभय मिटाकर आपथे संतोष शय्या लेटते।
संसारमें जिनके भविको दर्श परमानन्द थे,
ऐसे गुणोंके धाम जगमें एक विजयानन्द थे॥

[२०]

आमोदकारी आपकी छवि होगई जो लुप्त है,
किन्तु हृदयमें आज वो रहती हमारे गुप्त है।
पर आप सदृश विश्वमें अब देख पड़ता है कहाँ?
हम आपकेही नामसे पाते विजय जाते जहाँ॥

[२१]

आगन्तुकोंके साथ करते ज्ञानचरचाथे सदा,
थे ज्ञानदर्शनको सदा वे मानते निज संपदा ।
उपकार कर यों विश्वमें फिर स्वर्ग पाये अन्तमें,
है आजभी फैली जिन्होंकी कीर्ति पूर्ण दिगन्तमें ॥

[२२]

होता यदि कुछ और जीवन आपका संसारमें,
पड़ते नहीं भवि आजभी अज्ञानपारावारमें ।
थोड़े दिनोंमें आपने उपकार वहुतर कर दिया,
कर्तव्य कर निज विश्वमें स्वर्गीयवासावरलिया ॥

[२३]

निज नामके सम काम जगमें कर दिखाये आपने,
उन्मार्गमें जाते हुए वहु जन वचाये आपने ।
षड् दर्शनोंका ज्ञान उत्कट जैनमें सोहे यहाँ,
विन आपके विद्वान पुरुषोंमें अहो तव था कहाँ ? ॥

[२४]

विश्वोपकारी ब्रह्मचारी बाल्यसेही थे अहो!
व्रत ब्रह्मचर्य समान कोई औरभी है क्या कहो?
समता उन्होंकेसी किसीभी और में देखी नहीं,
अज्ञानियोंमें क्या कभी कुछ शांति देखी है कहीं?

[२५]

परप्राणियोंकेही लिए था जन्म पाया आपने,
कुछ ज्ञान देकरके हमारा भय मिटाया आपने ।
व्याख्यानमें क्या बुद्धिमें क्या ज्ञानमें क्या ध्यानमें,
तुमसा नहीं है जैनियोंमें आज मेरी जानमें ॥

[२६]

यद्यपि विना गुरु आपके सर्वस्व थे हम खोचुके,
सुरद्रुमके धोखे अहो विष वृक्ष थे हम बोचुके ।
हा भूल बैठे थे यहाँ हम आप अपने कर्मको,
समझा नहीं संपूर्ण था हमने तथा जिनधर्मको ॥

[२७]

पर पुण्यसे कुछभी हमारे जन्म पाया आपने,
भवकूपमें पड़ते हुए हमको बचाया आपने ।
उपकार जो हमपर किया मुखसे कहा जाता नहीं,
बिन आपके दुख हैं हमें वो भी कहा जाता नहीं ॥

[२८]

चिर नींदमें सोते हुए हमको जगाया आपने,
भूले हुवे थे हम हमें रस्ता बताया आपने ।
करुणानिधे ! तुमने समुन्नति तत्त्व सिखलाया हमें,
तुम धन्य हो तुमने हमारा रूप दिखलाया हमें ॥

[२९]

गुरु आपके होते हुए सुखमय सभी संसार था,
अज्ञानका संहार था और ज्ञानका संचार था ।
बिन आपकेही संघमें अब होरहा बहु भेद है,
नहीं ऐक्यताका लेशभी इस बातकाही खेद है ॥

[३०]

हे सौख्य सिन्धो! दीनवन्धो! हे विभो! करुणानिधि,
हो ऐक्यता संचार जिससे अव सिखाओ वो विधि।
हम धर्म अभिमानी वनें हमको सिखाओ वह कला,
हैं आपसे जन धन्य जिनसे हो हजारोंका भला ॥

[३१]

गुरु तरण तारण भय निवारण सौख्य कारण हो तुम्हीं,
वस मोहमद विटपावलीको मत्तवारण हो तुम्हीं।
हैं दास हम सव आपके स्वामी हमारे आप हैं,
हैं आपही वन्धु हमारे आपही माँ वाप हैं ॥

[३२]

(ऐक्यता.)

विन ऐक्यता संसारमें पाता विजय कोई नहीं,
विन ऐक्यता मन काय वाचा मोक्षभी मिलता नहीं।
है कौनसा संसारमें सुख वो जिसे करती नहीं?
आतंकभी है कौनसा वस वो जिसे हरती नहीं? ॥

[१]

हैं प्राण लेतीं सर्पकेभी संप कर कीड़ी अहो!
यदि संपयुत होवें मनुज तो क्या न करसकते कहो?।
देखो विदेशी राज्य करते ऐक्यताके भावसे,
हो ठोकरें खाते उन्होंकी आपतो तदभावसे ॥

[२]

विन ऐक्यताके हाय हमपर जुलम यवनोंने किया,
दें दोष हम किसको हमारी फूटने सव कुछ किया।
यदि एकता होती हृदयमें हा हमारे लेशभी,
तो स्वर्गकेही तुल्य होता यह हमारा देशभी ॥

[३]

राजत्व यवनोंका हमारे हिन्दमें जबसे हुवा,
अन्याय भारतवासियोंके धर्मपर तबसे हुवा ।
इस आर्यभूमिमें अनार्योंने चरण ज्यों ज्यों धरे,
देवालयोंकोही उन्होंने नष्ट हैं त्यों त्यों करे ॥

[४]

पर खास उसमेंभी असह्य जुल्म जैनोंपर किये,
भंडार फूँके पुस्तकोंके गर्म पानीके लिये ।
हा निष्ठुरोंने आ यहाँ जिनमूर्तियां खण्डित करीं,
जिनमंदिरोंकी वस्तुओंसे मस्जिदें मण्डित करीं ॥

[५]

हाँ हिन्दवासी एक हो पुरुषार्थ जो करते सभी,
अन्याय भारत वर्षमें क्या फेर वे करते कभी ? ।
अपमान यवनोंसे हमें विन ऐक्यता सहना पड़ा,
जो संप कर पुरुषार्थ करते सौख्य वे पाते बड़ा ॥

[६]

इस भाँति यवनोंसे हमारी वहुतसी हानी भई,
जीते दीवारोंमें चिनाये हाय हैं क्षत्री कई ।
उसकाल भारतवर्षकी जैसी दशा थी हो रही,
वैसी यहाँपर दुर्दशा हमसे लिखी जाती नहीं ॥

[७]

कुछ पुण्य बढ़नेसे हमारा राज्य यवनोंका गया,
नीति विचक्षण हिन्दमें अंग्रेजका आना भया ।
ये धर्ममें निश्चय किसीकेभी दखल करते नहीं,
कानूनसे निजके सदा हैं देश वश करते सही ॥

[८]

रहता सदा हममें यहां जो ऐक्यता सद्भाव था,
संपुर्ण जैनसमाजमें जो एकही वरताव था ।
विपरीत उसके आज है अज्ञान वादल छारहा,
वस क्या कहें यह काल है विद्रोह जल वरसा रहा ॥

[९]

हा साधुओंमेंभी कहाँ है? ऐक्यता सद्भाव वो,
था पूर्व ऋषियोंमें यहाँपर एकताका चाव जो।
हे ऐक्यते! अब सन्त पुरुषोंमें कदर तेरी नहीं,
है वास नीचोंका जहाँ तू आज रहती है वहीं॥

[१०]

जो संप रखकरके परस्पर कार्य करते हैं सदा,
हैं नाम उनकेही यहाँ विख्यात रहते सर्वदा।
जो हैं विरोधी कार्यकी सिद्धि कभी पाते नहीं,
निष्पुण्य प्राणि सौख्य संपतको यथा पाते नहीं॥

[११]

निज वीर्यताका गोप करना यह भयंकर पाप है,
विन ऐक्यता संसारमें नहीं शान्ति किन्तु ताप है।
हे भाइयो! अबतो परस्पर संप रख कारज करो,
निज वीर्यको गोपो नहीं आलस्यको तनसे हरो॥

[१२]

(पुरुपार्थ.)

उद्योविन संसारमें कुछ काम होसकता नहीं,
पुरुपार्थ जो करते नहीं क्या वे विजय पाते कहीं ? ।
अत एव उद्योगी बनो निज वीर्यको फोरो अभी,
अवसर मिले फोरो नहीं तो और फोरोगे कभी ? ॥

[१]

यदि संपयुत पौरुष करो फिर कर दिखाओ क्या नहीं ?
जो आपसे अप्राप्त फिरभी वस्तु वो जगमें नहीं ।
जिन वस्तुओंका स्वप्नमेंभी ध्यान था हमको नहीं,
पुरुपार्थसे प्रत्यक्ष जन करके दिखाते हैं यहीं ॥

[२]

हैं धूमशकटी[1] मोटरें पुरुपार्थसेही चल रहीं,
और व्योमगामीयानभी तो आज हैं कुछ कम नहीं ।
ये रेडियमसी वस्तुभी थे जन जिसे नहीं जानते,
हैं देखकर सुनकर तथा आश्चर्य जिसको मानते ॥

[३]

---

१ रेलगाडी.

दुस्साध्य ऐसी वस्तुओंको साध्य कर दिखला रहे,
ये शास्त्रही देखो हमारे हैं उन्हें सिखला रहे ।
पुरुषार्थका हीनत्वही दुख दे रहा हमको वड़ा,
क्यों सोरहे? अव तो उठो है ज्ञानका भानु चड़ा ॥

[४]

तुम आजभी निज पूर्वजोंका नाम रोशन कर सको,
थी धर्मकी जैसी दशा वैसी उसेभी कर सको ।
आलस्य यदि तनसे तुमारे नष्ट होवे आजभी,
कुछ है अधिक तुमको नहीं करना सुदुष्कर काजभी ॥

[५]

आलस्यही केवल तुमारे अङ्गसे जव जायगा,
उत्तेज जैनसमाजमें यकलक्त फिर आजायगा ।
उद्योगसे आलस हरो आखिर तभी होंगी कला,
हुशियार हो जिनवर भजो जिन धर्मको पालो भला ॥

[६]

इस विश्वमें संपन्न हो पुरुषार्थ जो करते नहीं,
सोचो विना पुरुषार्थके हैं विजय पासकते कहीं? ।
पुरुषार्थसे स्वामी वने देशी विदेशीभी यहाँ,
उद्योगसे पाते सफलता लोग जाते हैं जहाँ ॥

[७]

आरामसे वैठे हुए यह काल जाता है चला,
पुरुषार्थ विन जगमें तुमारी नष्ट होती हैं कला ।
दिलमें विचारो वात यह निज धैर्यता त्यागो नहीं,
धारण करो पुरुषार्थको ऐश्वर्यता पाओ यहीं ॥

[८]

कुछ नाम कर लो विश्वमें क्यों मौत कीड़ीकी मरो?
नीति वरो पौरुष धरो निज धर्मयुत कारज करो ।
होकर सचेतन देहसे जंजाल आलसको हरो,
उद्धार कर संसारका सानन्द भवसिन्धु तरो ॥

[९]

(परस्त्रीत्याग.)

अभिसारिकाके अंगसंगी हो रहे जो लोग हैं,
उनके शरीरोंमें हजारों नित्य होते रोग हैं।
निज द्रव्य व्यय करके अहो! वे मोल लेते पापको,
वे डालते हैं गर्तमें[2] हा विज्ञ अपने आपको ॥
[१]
वे भ्रूणहत्या पापसेभी तो कभी डरते नहीं,
हैं निन्द्य कारज कौनसे हा वे जिन्हें करते नहीं ?
दुष्कर्मरूपी भार अब भू से सहाजाता नहीं,
बस क्या कहें किसको कहें कुछभी कहा जाता नहीं ॥
[२]
स्याही लगाते आज वे यों पूर्वजोंके नाममें,
वे वास करते हैं सदा हा दुर्गुणोंके धाममें।
है श्रेष्ठ जन वोही सदा परनार सेवासे टरे,
परकामिनी मनको हरे तनको हरे धनको हरे ॥
[३]

---

१ परपुरुषपरतास्त्री. २ खड्डा.

जिनकी हजारों सेवमें थे देव नित रहते खड़े,
परकामिनीके संगसे वहु कष्ट हैं उनको पड़े ।
कोटीपति जाते गिने थे रंक वे इसने करे,
लंकेश रावणसे वली भी संगसे इसके मरे ॥

[४]

अत एव इसका सुज्ञ जनको त्याग करना चाहिये,
सज्जन जनोंसे विश्वमें अनुराग करना चाहिये ।
परनारको माता वहिनसी देखते वे धन्य हैं,
उनके सिवा संसारमें सुधरे हुवे क्या अन्य हैं? ॥

[५]

सीता सतीसी नारियां हैं शीलसे पूजी गईं,
हैं द्रौपदी आदि सतीभी तो हुई वहुती यहीं ।
पर शीलके कारण जगतविख्यात उनका नाम है,
संसारमें सवही गुणोंका शीलही तो धाम है ॥

[६]

(महावीर विद्यालय.)

श्री वीर विद्यालय हमारी द्वार उन्नतिका खुला,
कर ऐक्यता इसको बढ़ाओ भिन्नताको दो भुला।
उद्देश्यभी इसका समझलो जैनका उद्धार है,
करते यहाँ जो दान उनकी विश्वमें श्री सार है।

[१]

ज्ञानालोक विशेष चढ़ेगा इस विद्यालयके द्वारा,
समुन्नति सिर शिखर चढ़ेंगे इस विद्यालयके द्वारा।
बनकर शीघ्र सुविज्ञ इसीसे बन्धुजन बहुते सारे,
प्राप्त करेंगे धीर वीरता ज्ञानादि गुणगण सारे।

[२]

अमेरिका जापान ग्रीकभी विद्यासे बढ़ते जाते,
अन्य देशभी समुन्नतिके शिखरोंपर चढ़ते जाते।
यदि आपकोभी आशा है उन्नत पंथपर जानेकी,
करो प्रेरणा निज पुत्रोंको तो तुम ज्ञान पढ़ानेकी॥

[३]

---

१ रस्ता.

करो सफल निजवित्त वीर प्रभुके विद्यालयमें देके,
उठो करो पुरुषार्थ नाम बस उसी वीरप्रभुका ले के।
तन मन धनसे इसे बढ़ाओ मिल करके सबही भाई,
अगर धर्म अभिमान आपमें है कुछ ऊँची चतुराई।

[१०]

(बालवृद्धविवाह.)

है बालवृद्ध विवाहभी संसारमें फैला बड़ा,
था उच्च भारत जो इसीसे आज वो नीचे पड़ा।
यद्यपि सदा सुख आशमें जन क्लिष्ट करते काम हैं,
तज्जन्य सुख तो बस उन्हें भगवानकेही नाम हैं॥

[१]

---

१ खराब.

होकर खुशी वे बालकोंके आज करते नग्न हैं,
धर्मोन्नति उत्साह कल होते उन्होंके भग्न हैं ।
निर्विघ्न होकर फिर उन्होंकी दुष्ट होती चाल है,
आजन्मसे किन्तु पड़ा उनके गलेमें जाल है ॥

[२]

क्या चीज है शादी मगर जो जानते इतना नहीं,
उनका करादेना लगन क्या यह अनुचित है नहीं?
है बाल वृद्ध विवाहसे जो दुःख हम किससे कहें?
अब है उचित हमको यही चुपचाप बैठ व्यथा सहें ॥

[३]

है वर्ष पैंसठका तथा वर वर्ष कन्या सातकी,
धन लोभमें आकर अहो यों व्याह करते पातकी ।
जीवो मरो चाहे वधूवर चाहते वे दामको,
धिक्कार है हा हन्त उनके नामको औ कामको ॥

[४]

हो वालविधवा वे वधू कर याद पहली वातको,
दिनरात हैं हा कोसतीं निज तातको और मातको ।
इस भाँति पाकर दुःख वहुती कूट करती कर्म हैं,
हैं कुल वधू ज़ो किन्तु वे कुछ राखती कुल शर्म हैं ॥
[९]

(धनियोंकी दशा.)

है शेठ साहूकार लोगोंकी दशा जो हो रही,
पाठक सुनो संक्षेपसे हम निम्न लिखते हैं वही ।
वे वोतलोंकेही नसेमें मग्न रहते हैं सदा,
देवेन्द्र जैसी मानते हैं किन्तु आपनी संपदा ॥
[१]
पड़ती दशा निज वन्धुओंकी देखते वे हैं यहाँ,
जीवो मरो चाहे मगर वे ध्यान करते हैं कहाँ ? ।
निज नारको तो वे गुरुके तुल्यही हैं मानते,
हैं देवके सम विश्वमें निज द्रव्यको वे जानते ॥
[२]

हैं लेखना पढ़ना नहीं निज नाम तकभी जानते,
तोभी कहो धनवानको हैं कौनजो न बखानते ?
हैं आज प्रवृत्ति उन्होंकी किन्तु कुत्सित पन्थमें,
पर ध्यान है उनको कहाँ जो फल मिलेगा अन्तमें ? ॥

[३]

वे रंडियोंके नृत्य अथवा नाटकोंमें मग्न हैं,
धर्मोन्नति उत्साह तो उनके हृदयसे भग्न हैं ।
बन्धुजन हैं कौन और साधर्मिता कहते किसे ?
क्या अर्थ जैनी शब्दका वे जानते हैं क्या इसे ? ॥

[४]

बस ऐश और विलासको वे मानते निज धर्म हैं,
पर धर्मका तो लेशभरभी जानते नहीं मर्म हैं ।
हा ! धर्मबन्धु भाग्यवश हो अन्नके बिन मर रहे,
परवा नहीं उनको मगर वे पेट अपना भर रहे ॥

[५]

पर नाम रखते हैं वड़ों में काम कुछ करते नहीं,
क्या हाल होगा अन्तमें इस वातसे डरते नहीं।
वे आप तो डूवे पड़े संतानकोभी खो रहे,
सुर द्रूमके धोखे अहो! वे वृक्ष विषके वो रहे ॥

[६]

लाखों अपव्ययमें उड़े पैसा नहीं सद्धर्ममें,
इच्छा उन्होंकी हो रही है आज कुत्सित कर्ममें।
वे इन्द्रियोंकेही वशी हो कर अपव्यय कर रहे,
हैं देखते निज वन्धुओंको हाय भूखे मर रहे ॥

[७]

सव दुर्गुणोंका मूल उनमें एकही अज्ञान है,
विन साजके आनन्द कुछ करता नहीं दिल गान है ॥

[८]

(एक हिन्दू धर्मके नेता.)

हैं धर्मके नेता कहे किन्तु जिन्हें संसारमें,
  प्रत्यक्ष वे जाते बहे दुष्कर्म नदकी धारमें ।
ग्वादिही जो अक्षर त्रयीका धारते निज नाम हैं,
  मिस धर्मके दुष्कर्म करने मुख्य उनके काम हैं ॥

[१]

जैसा कि पहले कालमें भगवान केशवने किया,
  है आज नाटारङ्ग वैसाही उन्होंने कर दिया ।
हा धर्मनेता बन उन्होंने धर्मको दूषित किया,
  अवतार मानवका उन्होंने व्यर्थही जगमें लिया ॥

[२]

पर लायबलसे केसभी इसके लिए हैं हो चुके,
  इस बातपर बहुत जने हैं प्राण तकभी खो चुके ।
पर चाल यह उनकी जरा भी है न कम होती अहो,
  अंधेर ऐसा और भी है क्या कोई जगमें कहो? ॥

[३]

दुष्कर्मकी उनके लिए अब है कहाँ सीमा रही?
वे ओट ले श्रीकृष्णकी जो कुछ करें थोड़ा वही।
थोड़े दिनोंकी जिन्दगी इसका मजा ले लो यहाँ,
परलोकमें तो आप यह नृजन्म पाओगे कहाँ?॥

[४]

दुष्कर्म हिन्दूस्तानमें मिस धर्मके होने लगे,
उन्मूल कर सुरद्रूमको विष वृक्ष जन बोने लगे।
किस भाँति हो उन्नति करो इस वृद्ध भारत वर्षकी?
सीमा रही अब है कहाँ दुष्कर्मके उत्कर्ष की?॥

[५]

वे अन्ध श्रद्धावान पूजक किन्तु उनके हैं यहाँ,
अन्याय ऐसा अन्य देशोंमें भला होता कहाँ?।
ऐसे समयमें भी नहीं समझे यही तो खेद है,
ऐसे मनुष्यों और पशुओंमें कहो क्या भेद है?॥

[६]

(अभक्ष.)

नवनीत मांस, मधु, उंदुम्बर[1], पंचमी मदिरा खरी,
अज्ञात फल, वहु वीज फल, वैंगन, करा दुर्गुण भरी।
वर्फ, वेदल, तुच्छ फल, अचार फीम पिछानके,
रस[2] चलित, कच्चि मट्टि, भोजन रात्रि त्यागो जानके ॥

[१]

१ उदूम्बर पांच प्रकारका होता है अत एव उसके पाँचोंही भेद समझ लेने।

२ रस चलित कोई पदार्थ हो वह अभक्षणीय है क्योंकि स्वभाविक रस, गन्ध, स्पर्शमें फेरफार होनेसे उस पदार्थमें जीवोत्पत्ति होजाती है।

(सप्तव्यसन.)

दुख मांसभक्षी प्राणियोंको अन्तमें होता बड़ा,
था शुद्ध समकितवान 'श्रेणिक' नर्कमें जाना पड़ा ।
पर द्यूतकोभी जैन ग्रन्थोंमें बड़ा खोटा कहा,
इस द्यूतसेही पांडवोंका राज्यभी जाता रहा ॥

[१]

और मद्य पीनेसे हरिके नाश है कुलका भया,
पापर्धिसे राघव पिताका नाम दूषित होगया,
चोरिसे इस लोकमें नहीं कौन पाता कष्ट है ?
धन सङ्ग वेश्यासे हुआ किसका न जगमें नष्ट है ? ॥

[२]

लंकेशका मृत्यु तथा अपयश हुआ पर नारसे,
वचना सदाही कष्टदायी सप्तव्यसनाचारसे ।
रहना निरन्तर सत्य पथमें फ़र्ज अपना जानके,
सद्धर्मकी सेवा करो गुरुदेवको पैछानके ॥

[३]

(जैनसमाज.)

अति कष्टमेंभी त्राणपरका जो सदा करते रहे,
उपकार जलसे दुःखियोंके तापको हरते रहे।
देशोन्नतिके भी लिए संसारमें मरते रहे,
दुष्कर्म अत्याचारसे जो आजतक डरते रहे॥

[१]

उन जैनियोंकी आज देखो है बड़ी संख्या घटी,
बस क्या कहें सुन सुन हमारी जा रही छाती फटी।
परगीत गाते हैं सदा वे आप कुछ करते नहीं,
हानी रहे हैं देख निज पुरुपार्थ वे धरते नहीं॥

[२]

जो पूर्वमें इस जैनका झण्डा फरकता था यहाँ,
हा आज वैसी तेजता हममें दिखाती है कहाँ?।
है धर्म वैसाही मगर श्रद्धानमेंही भेद है,
वह पार होसकती तरी क्या मध्य जिसके छेद है?॥

[३]

(जैनपुरातन.)

है जैनदर्शनही पुरातन अन्य नूतन हैं सभी,
इसके लिए किन्तु पुरावे हैं यहाँपर आज भी।
यूरोपमें भी जैन प्रतिमा भूमिसे निकलीं अहो!
यह जैनदर्शन पूर्वमें था ना कहाँ फैला कहो? ॥
[१]

प्राचीनताके चिन्ह देखो जैनियोंके आज भी,
करते रहे हैं हिन्दमें बहु जैन राजा राज भी।
जिनमूर्तियां भू से निकलकर आज भी यों कह रहीं,
है विश्वमें प्राचीन वस्तु क्या कोई हमसे कहीं? ॥
[२]

(जैनसाहित्य.)

जिसके पृथुल साहित्यकीथी ओफ भारतमें चढ़ी,
उस जैन दर्शनकी दशा है निम्न अब सबसे पड़ी।
है आज भी साहित्य किन्तु जैनियोंका कम नहीं,
संसारभरमें अन्य जिसके देख पड़ता सम नहीं ॥
[१]

(भारत वर्ष.)

श्री राम राजा विश्वमें नीति विचक्षण हो गये,
हैं आज भारत वासियोंके नीतिसे दिल धो गये।
नीति हमारे हिन्दसे जो यों चली जाती नहीं,
तो आज भारत वर्षकी ऐसी दशा आती नहीं ॥

[१]

था पूर्व विद्याकेन्द्र जो वह आज भारत देखलो,
वलहीन विद्याहीन पर आधिन उसको लेखलो।
हैं भृत्यके अव काम करते त्यागकर निज धर्मको,
करके कलंकित आज वैठे पूर्वजोंके कर्मको ॥

[२]

विज्ञानता वरसभ्यताका लेशभी तो है नहीं,
निज धर्मसे जो हैं पतित क्या वे विजय पाते कहीं?।
जैसे हमारे पूर्वजोंने कार्य दुनियांमें किये,
हम इच्छते वैसे सदा हैं आज करनेके लिये ॥

[३]

पर आज वैसी है नहीं निज धैर्यवर विज्ञानता,
बहुमानके बदले हमारी हो रही अपमानता ।
है ऐक्यताका लेशभी जिस देशमें रहता नहीं,
क्या पाठको! वह देश पाता है समुन्नतिको कहीं? ॥
[४]
हा क्षुद्रजातिवानभी निज धर्म उन्नति कर रहे,
थे आर्य जो वे आज जाते ईर्षा नदमें बहे ।
कूकर दशा जैसी दशा है आज भारत वर्षकी,
आशा पुनः किसको रही है हिन्दके उत्कर्षकी ॥
[५]

(कर्म.)

संसारके सब प्राणियोंका कर्म पर आधार है,
इहलोक औ परलोकमें जो फल सदा दातार है ।
दो भेद हैं उसके शुभाशुभ जैन ग्रन्थोंमें कहे,
निज कर्मके अनुसारही जगजीव दुखसुख पा रहे ॥
[१]

इस कर्म राजाके अहो जग जीव सब आधीन हैं,
सुर दैत्य क्या शक्रेन्द्र तकभी तो नहीं स्वाधीन हैं।
हा कर्मवश होकर हजारों मोक्ष पथसे हैं फिरे,
दुःशासनोंसेही इसीके उच्च हो नीचे गिरे ॥

[२]

हे कर्म! ये तेरे नचाये नाचते सब लोग हैं,
तेरे कियेही सौख्यके संभोग होते रोग हैं।
संसारके हम जीवतो आधीन हैं तेरे सभी,
हे कर्म! क्यों निष्ठुर बनो कुछ तो दया लाओ कभी॥

[३]
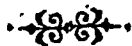
(सद्धर्मसेवा.)

संसारके वैभव कभी मिलते नहीं विन धर्मके,
शिव शर्म है मिलता नहीं जैसे विना सत्कर्मके।
जो जान यों सद्धर्म करते भावसे इह लोकमें,
मिलती उन्हें सुखसंपदा इह लोक औ परलोकमें ॥

[१]

जो भावयुत सत्कर्ममें निज द्रव्य व्यय करते सदा,
है सार श्री उनकी यहाँ भवपार वे तरते सदा ।
परके लिएही विश्वमें निज प्राण हैं जो धारते,
वे जीवही जगमें सदा परमार्थ कारज सारते ॥

[२]

कोटी सहस्रोंके यहाँ जो आज स्वामी हो रहे,
कर्तव्य अपना त्यागकर सुख नींदमें जो सो रहे ।
पूछो उन्हें क्या वे विभवको साथही ले जायँगे ?
नहीं लेशभी आशा मगर वे अन्तमें पछतायँगे ॥

[३]

सवही विनश्वर देखलो निस्सारसे संसारमें,
है जिन्दगी जाती वही अज्ञान नदकी धारमें ।
निःसारसेभी सारका उद्धार करना चाहिये,
सद्धर्मको आराध भवसिन्धु उतरना चाहिये ॥

[४]

वलदेव वासुदेव चक्री वृत्त जिनके हैं वड़े,
जाते जहाँ जिनकी सदा सुरसेव करतेथे खड़े।
सिर छत्र होतेथे जिन्होंके तैलमर्दित वाल थे,
चलते जिन्होंके साथ नौकर हाथ ले करवाल[1] थे ॥

[५]

हरिचन्द्रसे राजा जिन्होंने सत्य पण तोड़ा नहीं,
निज प्राण रहते तक जिन्होंनें धर्मको छोड़ा नहीं।
दुःसह्य जो विपदा उन्होंने सत्यके कारण सहीं,
वे आज भी संसारमें क्या हैं विदित किसको ? नहीं ॥

[६]

इस रत्नगर्भा गह्वरीकी पींठपर ऐसे घने,
संपन्न हो सव कर्ममें फिर ग्रास मृत्युके वने।
इस वातको सम्यग्विचारो पन्थ सवका है यही,
परमार्थसे जो कार्य साधें सुज्ञ होते हैं वही ॥

[७]

---

१ तलवार.

ऐसे हज़ारोंही हमारे हिन्दवासी होगये,
सद्धर्मके अङ्कूर वे संसारमें हैं बो गये ।
कर याद उनके वृत्त हमको धीर होना चाहिये,
उन पूर्वजोंके तुल्यही गंभीर होना चाहिये ॥

[८]

है क्या भरोसा जिन्दगीका आप क्यों भूले पड़े ?
सद्धर्मकी सेवा करो निज भाग्य जो समझो बड़े ।
बिन पुण्यके संसारमें सद्धर्म मिल सकता नहीं,
पापीष्ट भी क्या विश्वमें शुभ चीज पासकता कहीं ? ॥

[९]

बहुधा हमारे हिन्दमें सद्धर्मका परित्याग है,
कुत्सित व्यसन पीछे पड़े उनमार्गमें अनुराग है ।
आलस्यने आवास कीना हाय भारतवर्षमें,
अब हैं कहाँ वे दिन गुजरते थे सदा जो हर्षमें ? ॥

[१०]

शुभ कार्य तो करते नहीं आशा करें शिव शर्मकी,
इप्सित कहो कैसे मिले श्रद्धा नहीं जब धर्मकी ।
सद्धर्मका परित्याग कर जो उन्नतिको इच्छते,
पाषाण नावा बैठ वे सागर उतरना इच्छते ॥

[११]

धनहीन हैं धीमान उत्सुक धर्म उन्नतिमें बड़े,
निज धर्म उन्नतिके लिए वे प्राण तक देने खड़े ।
पर ध्यान करते हैं कहाँ हम हो गये ऐसे कड़े,
धनवान सत्तावान तो हैं मानमें फूले पड़े ॥

[१२]

विनधर्मके हो ज्ञात सबको सौख्य पाओगे नहीं,
मन मोहनीसी वस्तु ये सब छोड़ जाओगे यहीं ।
चंपा चँवेली पुष्प ज्यों पानी विना खिलता नहीं,
सद्धर्मके विन विश्वमें त्यों सौख्यभी मिलता नहीं ॥

[१३]

क्या आज तक संसारमें है नित्य जन कोई रहा ?
यह काल सबको एक पथसेही सदा लेजा रहा।
जो जान कर ऐसा सदा सत्कर्म करते चाहसे,
भवपार हैं तरते वही सद्धर्मके उत्साहसे ॥

[१४]

(मतभेद.)

निकला दिगम्बर पन्थ भी तो है हमींमेंसे यहाँ,
गुरु भद्रबाहुसे प्रथम था इनका उद्भवही कहाँ? ।
जैसे कि आर्यसमाज निकला देखते सबके यहाँ,
पर अल्पसेही कालमें फैला नहीं है वो कहाँ? ॥

[१]

१ भगवान महावीरस्वामीके निर्वाण बाद ६०९ वर्षकी सालमें दिगम्बर मत, रथवीर पुरनगरमें शिवभूति मुनिसे निकला.

इस भाँति नूतनपन्थियोंसे व्याप्त सारा देश है,
लो देख नूतन ढूँढियोंका क्या निराला वेश है।
जिनधर्मसे विपरीतही आचार उनका है सभी,
जैनागमानुसार चलते हैं नहीं बिलकुल कभी. ॥

[२]

बस माँग लाना बैठ खाना मुख्य उनका काम है,
विद्या पठन पाठन वहाँ भगवानकाही नाम है।
करके मलीना चार वे करते विदूषित धर्मको,
समझा नहीं किन्तु उन्होंने धर्मके शुध मर्मको ॥

[३]

विधि हो न क्यों प्रतिकूल जब वे दुर्गुणोंके धाम हैं,
करते निरंतर आज वे विद्रोहकेही काम हैं।
मत पक्ष करना आज इसको मान बैठे धर्म हैं,
करके परस्पर किन्तु निन्दा बाँधते दृढ़ कर्म हैं ॥

[४]

भवितव्यता अनुसारही इन्सानकी होती मति,
दें दोष हम किसको अहो! है कर्मकी न्यारी गति।
विपरीत बुद्धि होरही है आज यों संसारकी,
किसको खबर है किन्तु इस दुर्दैव पारावारकी॥
[९]

(वेश्या नचानेसे धिक्कार पड़ी है.)

वेश्या न चाते हैं बुलाकर धर्म प्रीति तोड़के,
उनकी अनागत संपदा बैठे न क्यों मुँह मोड़के?।
धिक्कार तब ले दे रहे कहते मँजीरे है किन्हें,
वेश्या उठाकर हाथ करती है इन्हें धिग् है इन्हें॥
[१०]

(दानी लोकप्रिय.)

दाता सदा प्रिय लोक है द्रविणेश लोक प्रिय नहीं,
सब यांचते जलधर यथा सिन्धुपति कोई नहीं।
अत एव सब दानी बनों मानी कुसंगतिको हरो,
सत्कर्मको तनसे करो मनसे करो धनसे करो॥
[११]

(विनज्ञान मनुष्य भू भार है.)

आहार निद्रा भोग भय पशु मानवोंमें समान है,
केवल अधिक है तो मनुजमें एकही बस ज्ञान है।
उस ज्ञानसे जो हीन है वह नर पशु अनुसार है,
संसारमें विन ज्ञान जीवोंका तनु भू भार है ॥

[१]
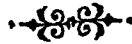
(विद्याकी आवश्यकता.)

जैसे विना भानु, दिवा दोषा[१] यथा शशीके विना,
धनके विना स्वामित्व जैसे वृक्ष पल्लवके विना ।
संसारमें संसारियोंका घर यथा नारी विना,
नहीं शोभता मानव तथा ही सर्वदा विद्या विना,

[१]

१ रात्रि.

(सज्जनसंपदा.)

गौ भैंस खाकर घास देती नित्य देखो क्षीर हैं,
पीकर जिसे बुद्धिनिधि वनते हजारों वीर हैं।
तरुताप सहकरभी अहो! परिपक फल देते सदा,
परके लिएही विश्वमें होती है सज्जन संपदा ॥

[१]

(संसारके भोग भयंकर.)

भोगको भय रोगका है वित्तको भय राजका,
वृद्धत्वका भय रूपको भय देहको यमराजका।
ये वस्तुयें संसारमें सवही भयंकर जान लो,
हाँ वस अभयदातार केवल धर्मकोही मान लो ॥

[१]

निज शत्रुओंकेभी गुणोंका गान करना चाहिये,
सज्जन जनोंका विश्वमें सन्मान करना चाहिये ।
सचही सदा वदना कभी नहीं लोप करना सत्यका,
है श्रेष्ठजन जगमें वही जो पान करता पथ्यका ॥

[१]

जो जान करके दोष हैं परके कभी कहते नहीं,
होकर स्वयं गुणवान निज गुणवान जो करते नहीं।
उन सज्जनोंकी फैलती है कीर्ति सर्व दिगन्तमें,
वे लोक प्रिय होकर सदा हैं स्वर्ग पाते अन्तमें॥

[२]

(वित्त महिमा.)

है वित्त जिसके पासमें पण्डित वही जाता गिना,
हैं श्रेष्ठ भी गुणदोष होजाते अहो! धनके विना।
धनवानके होते हजारों मित्र भी देखो यहाँ,
पर ज्ञात हो सत्कर्मके विन नाम होता है कहाँ?॥

[१]

हैं कार्य जो करते नहीं औ बोलते हैं जोरसे,
धिक्कार उनको सर्वदा पड़ती यहाँ सब ओरसे।
पर बोलते मुखसे नहीं जो कार्य करते हैं सदा,
गुणगान उनके विश्वमें सब लोग करते हैं सदा॥

[१]

(धर्महीन मनुष्य कैसा होता है.)

पानी विना जैसे सरोवर पुष्प विन सौरभ यथा,
लक्ष्मी विना प्रभुता विना जलके जलद् शोभे यथा।
पति हीन नारी काव्य रस विन साधु विद्या विन यथा,
विन धर्मके संसारमें हो ज्ञात है प्राणी तथा ॥

[१]

(अति लोभ दुखदायी.)

स्पृह यालु होकर आज तक देखा सुखी कोई यहाँ?
हैं लोभसे पाते सदा जन कष्टही जाते जहाँ।
विन धर्म सुख मिलता नहीं बहु लोभसे संसारमें,
अति लोभसे डूबा अहो! संभूम पारावारमें ॥

[१]

(क्रोध.)

यह क्रोध भी संसारमें दुख दे रहा सबको अहो,
उपशम किये विन क्रोधको क्या शान्ति मिल सकती कहो?
क्रोधाग्निसे जलते हुयेको नीर हितकारी नहीं.
जैसे अभव्योंको जिनेश्वर देव उपकारी नहीं ॥

[१]

(दृष्टिराग.)

है आज दृष्टि रागभी संसारमें बहु बढ़ रहा,
सुविवेकरूपी तरणि तो जनहृद्गगनसे पड़ रहा।
अज्ञान होकर हाय दृष्टि रागमें जन फँस रहे,
अज्ञान हैं वे भी मगर उनके हृदय जो वस रहे॥

[१]

ज्ञानी धराकर नाम करते काम हैं अज्ञानके,
उपकार बुद्धि है नहीं हैं आप भूखे मानके।
थोड़े दिनोंकी जिन्दगी वरवाद क्यों करते इसे?
जीना धरापर है कहाँ तक यह खवर क्या है किसे?॥

[२]

त्यों पक्षपाती लोग भी हैं आज वहुतर होरहे,
इन पक्षपातोंसे सदा निज संपदाको खो रहे।
कैसे वने फिर वे गुणी गुणवानके रागी नहीं?
क्या कीर्ति होसकती उन्होंकी आप जो त्यागी नहीं?॥

[३]

१ सूर्य.

मैं कौन हूँ आया कहाँसे और जाऊँगा कहाँ,
　　करना मुझे क्या था किया मैं कार्य क्या आकर यहाँ।
नहीं सोच जस इतना मनुज क्या वो कहा जाता कभी?
　　वह तुल्य पशुकेही निजायु पूर्ण कर जाता सभी ॥

[२]

ऐश्वर्यको पाकर यहाँ सत्कर्म जो करते नहीं,
　　धर्मी धराकर नाम हैं जो पापसे डरते नहीं।
दिनरात ऐसे जो रहे चल आज कुत्सित पन्थमें,
　　वैतरणीको तरना पड़ेगा किन्तु उनको अन्तमें ॥

[३]

संसारमें दुखकी दशा रहती निरन्तर है नहीं,
　　पर सौख्य युत भी तो यहाँ रहता सदा कोई नहीं।
ज्यों पक्ष हैं दो मासके वैसी दशा संसारकी,
　　क्या है खबर किसको कहो दुर्दैव पारावारकी? ॥

[४]

जिनके हृदय रहते सदा थे आर्द्र करुणा भावसे,
लो देख उनको आज निष्ठुर पापके सद्भावसे ।
जो धीर औ गम्भीर थे वे तुच्छ उर धारी बने,
थे देश रक्षक पूर्वमें जो आज वे भक्षक बने ॥

[५]

जो त्राण करते थे प्रथम वे आज लेते प्राण हैं,
थे जो वचन रसके भरे वे मर्म वेधी बाण हैं ।
जो पूर्वमें थे मित्र क्या वे आज शत्रु हैं नहीं, ?
इस दुःखदायी हाल को हमसे कहा जाता नहीं ॥

[६]

होता जिन्होंके मन्दिरोंमें नित्य नाटारङ्ग था,
सब लोकसे सब कर्ममें जिनका निराला ढङ्ग था ।
संपूर्ण भारत वर्षकी स्वाधीन थी जिनके मही,
आश्चर्य है उनकी कि अब कुछ भी निसानी ना रही ॥

[७]

न दुखमें निज धैर्य तजो कभी, न सुखमें खुश हो यह भूलना।
भुगतते जगमें जन हैं सदा, फलसभी अपने कृत कर्मका ॥

[८]

हृदयमें कर धारण तोषको, तज सदा मन रे पर दोषको।
त्रिजगमें जिनधर्म हि सार है, बिन सुधर्म नहीं दुख पार है ॥

[९]

हे जीव कुछ तो सोच क्यों फिरता अहंकारी बना,
होकर निरङ्कुश आज यों तू दम्भकीचड़में सना।
नहीं देखता तू स्वार्थ वश हो किन्तु धर्माधर्मको,
दिन रात है तू कर रहा दुखजनक इस धुष्कर्मको ॥

[१०]

परकी विभवता देख तुझको खेद करना व्यर्थ है,
बिन धर्मके तू प्राप्त करनेके लिए असमर्थ है।
इच्छा यदि करता विभवकी तो सदा कर धर्मको,
पर दुःखदायी जानकरके छोड़दे दुष्कर्मको ॥

[११]

हाँ अन्यथा तो पापकाही पिण्ड तेरे साथ है,
है चार दिनकी चाँदनी बस फिर अँधेरी रात है।
कर सोच चेतन आज गुमराई करे किस बातकी,
बस है खबर संसारमें किसको भला दिन रातकी ?॥

[१२]

आयु गले दिन रात क्यों तू नींदमें सोता पड़ा,
जिनराजका डंका बजा है छोड़ निद्रा हो खड़ा।
रस्ता विकट है घोर तेरा सोच क्यों करता नहीं ?
पीछे पड़े हैं चोर तेरे मूढ क्यों डरता नहीं ? ॥

[१३]

तू मोहमें जिसके पड़ा वह संग आवेगी नहीं,
तू जायगा जब अन्तमें वह छोड़नी होगी यहीं।
इसके हजारों होगये पर यह किसीकी है नहीं,
लङ्केशसे खाली गये हैं छोड़ मायाको यहीं ॥

[१४]

(धर्ममहत्व.)

भवि सदा जिन देव भजो भजो, कुगतिदायक पन्थ तजो तजो।
स्वतन आलस वस्त्र उतारके, प्रिय बनो जग कारज सारके ॥

[१]

यदि तुम्हें निज धर्म महत्व है, भविजनो तुममें यदि सत्व है।
सदय हो उपकार करो सदा, प्रिय जनो भवपार तरो सदा ॥

[२]

जगुपकार यही निजमान है, विदित ये जिससे वह ज्ञान है।
हृदयमें निज धैर्य धरो सदा, प्रियजनो भवपार तरो सदा ॥

[३]

कहत देव पुकार पुकारके, भवि सुनो उर धीरज धारके।
दुरितको न करो न डरो सदा, प्रियजनो भवपार तरो सदा ॥

[४]

सुगुरु सेव करो शुभ भावसे, हृदय हो शुध मान अभावसे।
न तुम धर्म विहीन मरो सदा, प्रियजनो भवपार तरो सदा ॥

[५]

यदि कहीं तुमरा अपमान हो, यदि कहीं तुमरा बहु मान हो।
न उसपे कुछ गौर करो सदा, प्रियजनो भवपार तरो सदा ॥

[६]

हृदयका सब मैल निकाल दो, कुगतिके पथमें मत ख्याल दो।
दुरितको अपने दलते रहो, सुनयके पथमें चलते रहो ॥

[७]

(ज्ञान.)

न विन ज्ञान यहाँ कुछ मान है,
न विन ज्ञान जिनेश्वर ध्यान है।
न सुख ज्ञान विना इह लोकमें,
न विन ज्ञान कभी परलोकमें ॥

[१]

न कुछ जीवन है विन ज्ञानके,
ध्रुपद राग यथा विन तानके।
इस लिए भवि ज्ञान पढ़ो सदा,
दुरितको हरणार्थ बढ़ो सदा ॥

[२]

परम ज्ञान धुरीण परार्थ हैं,
जगतमें वह जीव कृतार्थ हैं ।
वह सदैव धराधर तुल्य हैं,
स्वगुणसे वह नित्य अमूल्य हैं ॥
[३]

विगत दोष जिनेश्वर हो तुम्हीं,
गुण समूह त्रिपोषक हो तुम्हीं ।
मम मनोरथ पूर्ण करो सभी,
विकट संकट दूर हरो सभी ॥
[१]

कंपायमान मेरु जिसने किया है,
त्रैलोक्यमें पद बडा जिसने लिया है ।
है पूजता नित जिसे सुरलोक सारा,
देवाधिदेव वह दुःख हरो तुमारा ॥
[१]